Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
UGC Approved Journal No. 63726
Impact Factor:4.081
Volume-12, Issue-4, March-2019 www.researchguru.net

बौद्धिक क्रांति का सफर : ब्रिटिशकालीन भारत में रेलवे का विकास और हिंदी साहित्य

अखिल कुमार गुप्ता
शोधार्थी, इतिहास विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म. प्र.)

सारां"ा–भारत में रेलवे की स्थापना के आर्थिक एवं राजनीतिक विस्तार का बहुत ही महत्वपूर्ण ढंग से दस्तावेजीकरण किया गया। डलहौजी के अपने प्रसिद्ध रेलवे टिप्पण से लेकर, अंग्रेज अधिकारियों प्रशासकों, रेलवे इंजीनियरों, भारतीय आर्थिक चिंतक, उद्योगपति, अन्य देशों के यात्री तथा भारतीय लेखकों ने भी अपने लेखन में रेलवे का जिक्र किया। औपनिवेशिक भारत में धीरे–धीरे विकसित अंग्रेजी, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी विभिन्न लेखकों ने अपने साहित्य सृजन, आलोचनात्मक लेख, यात्रा वृतान्त तथा व्यक्तिगत जीवनी, डायरी एवं पत्रों के माध्यम से रेलवे संबंधी साहित्य को समृद्ध किया। पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति का जो प्रसार तत्कालीन भारत में अंग्रेजों के द्वारा हो रहा था, उसका असर यहाँ की शिक्षा प्रणाली पर भी पड़ा। रेलवे और शिक्षा के विस्तार ने दोनों को एक साथ में लाकर एक नए संबंध की रचना की। हिंदी भाषा प्रदेश (उत्तर भारत) में तत्कालीन कई लेखकों ने अपनी यात्राओं को छोटे–छोटे पत्रक या पुस्तिका में लिपिबद्ध किया। तत्कालीन देशी भाषाओं में कई यात्रियों ने अपने लेख लिखे जिन्हें विभिन्न पुस्तिकाओं में प्रकाशित किया गया। एक ओर यह आवागमन के रूप में बढ़ती राजनीतिक चेतना थी तथा दूसरी ओर प्रेस, अखबारों तथा पुस्तिकाओं का भी प्रसार हो रहा था। इन्हीं पुस्तिकाओं में कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र चद्रिंका, हिंदी प्रदीप, भारत जीवन, क्षत्रिय पत्रिका, सारन सरोज, मोहन चद्रिका तथा सरस्वती प्रमुख रहीं। ये पत्रिकाएं इतिहास, शासन, राजनीति, धर्म, संस्कृति तथा समसामाजिक विषयों से जुड़े मुद्दों पर प्रकाश डालतीं थीं। इसके साथ ही इनमें रेलवे से जुड़े विभिन्न प्रसंग भी प्रकाशित होते थे। तत्कालीन समय में रेलवे यात्रा से जुड़ी कहानियां तथा यात्रा वृत्तान्त का वर्णन भी इन पत्रिकाओं में मिलता है। धीरे–धीरे विकसित होती बौद्धिक चेतना ने भारत में साहित्य के क्षेत्र में एक क्रांति ला दी। यहाँ यह तथ्य ध्यान रखने योग्य है कि वास्तविकता में तत्कालीन समय में यह साहित्य अंग्रेजों के लिए, उनके साथ और उनके विरूद्ध भी लिखा गया लेकिन आधुनिकता, वैज्ञानिकता तथा मानवता से प्रेरित इस साहित्य ने भारत में एक नई परम्परा का विकास किया।

कुंजी शब्द–यात्रा वृतान्त, राजनीतिक चेतना, हिन्दी भाषा प्रदेश, आधुनिकता, बौद्धिक क्रांति।

ईस्ट इंडिया कंपनी से लेकर राज की सरकार तक विभिन्न क्षेत्रों में प्रक्रियाबद्ध बदलाव हुए। बंगाल में अंग्रेजी तथा बंगाली भाषा के विकास के साथ उत्तर भारत में कई लेखकों ने हिन्दी भाषा को राजकीय संरक्षण तथा सरकारी भाषा बनाने की माँग की। उत्तर भारत में यह वर्ग अंग्रेजों की नीतियों एवं शासन का नम्रतापूर्ण विरोध करता था लेकिन उसे उखाड़ फेकने की कोशिश नहीं करता था। इस वर्ग के प्रतिनिधियों के रूप में राजा शिवप्रसाद और भारतेन्दु दोनों ही सरकार के वफादार थे। हिंदी के एक तीसरे लेखक लक्ष्मण सिंह भी जो इटावा के डिप्टी कलक्टर थे और जिन्हें अंग्रेज सरकार ने राजा की उपाधि दी थी, ऐसे ही वफादार थे।[1] इस वर्ग के रचना संसार ने उत्तर भारत में हिंदी भाषा के उदय एवं विस्तार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। हिन्दी भाषा के साहित्यकारों ने विविध विषयों पर लिखते हुए अतीत की ललक, इतिहास का पुर्नजन्म, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति सहित उपनिवेशी व्यवस्था प्रणाली में शिक्षा, उद्योग, यातायात एवं शासन पर भी अपनी लेखनी की। यातायात के साधनों में रेलवे तत्कालीन समय में अपना विस्तार कर रही थी जिसके कारण रेलवे से भारत को देखने की कोशिश की गई। इसी यात्रा की शुरूआत से हिन्दी में यात्रा वृतान्त का आरम्भ हुआ।

यात्रा साहित्य का प्रथम ग्रंथ 1883 में श्रीमति हरदेवी द्वारा लिखित 'लन्दन यात्रा' माना जाता है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने यात्रा साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु से माना है। तिवारी जी के शब्दों में हिन्दी साहित्य में यात्रा–वृत्तान्त लिखने की परम्परा का सूत्रपात भारतेन्दु से माना जा सकता है। भारतेन्दु ने सरयू पार की यात्रा, मेंहदाबल की यात्रा और लखनऊ की यात्रा आदि शीर्षको से इन वृत्तान्तों का बड़ा रोचक और सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है।[2] भारतेन्दु ने तत्कालीन समय में उपलब्ध यातायात के साधनों के साथ ही रेलवे से भी यात्रा की जिससे सामाजिक गतिशीलता तथा राजनीतिक एकीकरण को बढ़ावा मिला। उन्होंने कानपुर, लखनऊ, सहारनपुर, मसूरी, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, आगरा की क्रमबद्ध यात्रा की। हिन्दी भाषा क्षेत्र के पूर्वी और पश्चिमी क्षेत्रों का भ्रमण किया। अजमेर, अयोध्या, बस्ती, गोरखपुर, उदयपुर और वैधनाथ हो आए। बलिया गए तथा कलकत्ता की भी यात्रा की। ये यात्राएं उन्हें जनता के सम्पर्क में लाईं।[3] हिन्दी भाषा के विकास में जो स्थान भारतेन्दु को हासिल है इसी कारण हिन्दी साहित्य का पहला युग भारतेन्दु युग कहलाता है। उनके माध्यम से ही हिन्दी में रेलवे वृत्तान्त को बढ़ावा मिला। इससे हिन्दी प्रदेश में नवजागरण को बल मिला तथा दूसरे अन्य हिन्दी लेखकों ने रेलवे पर अपनी लेखनी की।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के द्वारा लिखी गई सरयू पार की यात्रा हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खं. 6 सं. 8 फरवरी सन् 1879 में छपा, यह यात्रा वृत्तान्त बड़ा विस्तृत है। इस लेख में उन्होंने अयोध्या तथा कैम्प हरैया बाजार के माध्यम से तत्कालीन समाज का चित्रण किया–

अयोध्या : कल सांझ को चेराग जले रेल पर सवार हुए, यह गए, वह गए। राह में स्टेशनों पर बड़ी भीड़ न जाने क्यो? और मजा यह कि पानी कहीं नहीं मिलता था। यह कंपनी यजीद के खानदान की मालूम होती है कि ईमानदारी को पानी तक नहीं देती। यह सिप्रस का टापू सरकार के हाथ आने से और शाम में सरकार का बंदोवस्त होने से यह भी शामत का मारा शामी तरीका अखतियार किया गया है कि शाम तक किसी को पानी न मिले। स्टेशन के नौकरों से फर्याद करो तो कहते है कि डांक पहुंचावे, रोशनी दिखलावें कि पानी दें। खैर, ज्यों–त्यों कर अयोध्या पहुंचे। इतना ही धन्य माना कि श्रीराम नवमी की रात अयोध्या में कटी। भीड़ बहुत ही है, मेला दरिद्र और मैले लोगों का, यहां के लोग बड़े ही कंगालटिरे है। इस वक्त दोपहर को अब उस पर जाते है। ऊंट गाड़ी यहां से पांच कोस पर मिलती है।[4] भारतेन्दु तत्कालीन भारत में फैली रेलवे अव्यवस्था पर संकेत करतें हैं तथा पीने के पानी, नौकरों का रवैया, रोशनी तथा गंदगी के बारे में लिखतें हैं। इसके साथ ही परम्परागत रूप से यातायात के साधनों का भी जिक्र करतें हैं जिसके कारण उन्हें दिक्कतें भी होती हैं। मुख्य शहरों से छोटे कस्बे तक कई स्टेशन बनाए गए लेकिन ग्रामीण भारत की तस्वीर नहीं बदली क्योंकि वहाँ पर घोड़ा, बैल तथा ऊंट गाड़ी का प्रचलन बना रहा।

कैम्प हरैया बाजार में वह लिखतें हैं, अब तक तीन पहर का सफर हो चुका है और सफर भी कई तरह का और तकलीफ देने वाला। पहिले सरा से गाड़ी पर चले। मेला देखते हुए रामघाट की सड़क पर गाड़ी से उतरे। वहां से पैदल धूप में गर्म रेती में सरजू किनारे गुदारा घाट पर पहुंचे। वहां से मुश्किल से नाव पर सवार होकर सरयू पार हुए।[5] भारतेन्दु अपनी यात्रा के दौरान कई पड़ाव से गुजरे। उन्हें गाड़ी, पैदल, नाव से भी चलना पड़ा। उन्होंने यात्रा वृत्तान्त के दौरान देशकाल में होने वाली तमाम चीजों पर बरीकी से लिखा। पैदल तथा नाव से तो कही अच्छा गाड़ी ही थी लेकिन अफसोस सिर्फ एक ही बात का रहा कि यह प्रत्येक जगह नहीं जाती। हालांकि उन्होंने रेलवे में व्याप्त दिक्कतों तथा लापरवाहियों के बारे में भी लिखा। बस्ती के अपने भ्रमण पर वह लिखतें हैं, परसों पहिली एप्रिल थी इससे सफर करके रेती में बेबकूफ बनने का और तकलीफ में सफर करने का हाल लिख चुके हैं। अब आठ बजे सुबह रें रैं करके बस्ती पहुंचे।[6] रेलवे में यात्रा के दौरान गाड़ी का समय पर न पहुँचना एक आम बात थी, देर अक्सर ही होती थी। तत्कालीन समय में मानवीय सिगनल प्रणाली थी,

प्रकाश व्यवस्था भी न थी इसलिए ट्रेन विलम्ब से पहुँचा करती थी। भारतेन्दु की शिकायत सही थी लेकिन जिम्मेदारी में विभिन्न रेलवे कंपनियां अपना मुंह मोड़ लेतीं थीं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के द्वारा 1884 में लिखा गया 'भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?' लेख कई मायने में अदभूत है। एक ओर वह कांग्रेस के जन्म से पूर्व उसी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं जो शुरूआत में उदारवादी थी वही दूसरी ओर वो भारत से मेहनत करने की बात करते हैं जिससे देश में छोटी–बड़ी चीजें बनाई जा सकें। वह लिखतें हैं, 'आज बड़े ही आनन्द का दिन है कि इस छोटे से नगर बलिया में हम इतने मनुष्यों को बड़े उत्साह से एक स्थान पर देखतें हैं। इस अभागे आलसी देश में जो कुछ हो जाय वही बहुत कुछ है। बनारस ऐसे–ऐसे बड़े नगरों में जब कुछ नही होता तो यह हम क्यों न कहेंगे कि बलिया में जो कुछ हमने देखा वह बहुत ही प्रशंसा के योग्य है। इस उत्साह का मूल कारण जो हमने खोजा तो प्रगट हो गया कि इस देश के भाग्य से आजकल यहां सारा समाज ही ऐसा एकत्र है। जहां राबर्ट्स साहेब बहादुर ऐसे कलेक्टर हों वहां क्यों न ऐसा समाज हो। जिस देश और काल में ईश्वर ने अकबर को उत्पन्न किया था उसी में अबुलफजल, बीरबल, टोडरमल को भी उत्पन्न किया। यहां राबर्ट्स साहब अकबर हैं तो मुंशी चतुर्भुज सहाय, मुंशी बिहारी लाल साहेब आदि अबुलफजल और टोडरमल हैं। हमारे हिन्दुस्तानी लोग तो रेल की गाड़ी है। यद्यपि फर्स्ट क्लास, सेकेण्ड क्लास आदि गाड़ी बहुत अच्छी–अच्छी और बड़े–बड़े महसूल की इस ट्रेन में लगी है पर बिना इंजिन ये सब नहीं चल सकतीं, वैसे ही हिन्दुस्तानी लोगों को कोई चलाने वाला हो तो ये क्या नहीं कर सकते।[7] भारतेन्दु अपने लेखन के माध्यम से भारत में शासन व्यवस्था, उद्योगीकरण तथा शिक्षा पर अंग्रेजों का अनुसरण करने की बात करते थे। उनका मानना था कि अंग्रेजों ने अपने धर्म और राजनीति के कारण इतनी दूर एक नए क्षेत्र में व्यवस्था स्थापित की है। इसलिए हमें अपनी एकता और उन्नति के लिए इसी का अनुसरण करना चाहिए। रेलवे का उदाहरण वो इसी संदर्भ में देतें हैं कि चाहे कितने भी महत्वपूर्ण लोग क्यों न हो लेकिन उसे आगे ले जाने वाला होना चाहिए। वगैर उसके काम नहीं चल सकता। रेलवे की इसी उपमा को हम अगले वर्ष स्थापित होनी वाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के रूप में देखते है जिसके कारण एक प्रक्रियाबद्ध रूप से सम्पूर्ण भारत की राजनीति का स्वरूप ही बदल गया।

वो आगे कहते हैं कि भारत में अंग्रेजों ने जो वर्णभेद चलाया था, उससे उनके जनतंत्र की कलई अच्छी तरह खुल जाती है। भारतेन्दु स्वयं यात्रा करते हुए इस वर्णभेद के शिकार हुए थे। वैधनाथ की यात्रा में उन्होंने एक दिलचस्प घटना का वर्णन किया है; लेडीज कम्पार्टमेंट खाली था, मैंने गार्ड से कितना कहा कि इसमें सोने दो, न माना और दानापुर से दो चार नीम अंग्रेज (लेडी नही सिर्फ लैड) मिले उनको बेतकल्लुफ बैठा दिया। फर्स्ट क्लास की सिर्फ दो गाड़ी एक में महाराज दूसरी आधी लेडीज आधी में अंग्रेज अब कहाँ सोवैं कि नींद आवै। सचमुच अब तो तपस्या करके गोरी–गोरी कोख से जन्म ले तब संसार में सुख मिलै।[8] दरअसल वो अंग्रेजों की नीतियों पर व्यंग करते हुए लोकतांत्रिक व्यवस्था की पोल खोलतें हैं। लार्ड डलहौजी के भक्तों को इस पर बड़ा नाज है कि अंग्रेजों ने रेल तार चला दिए और भारत का उद्योगीकरण किया। अंग्रेजों ने जो कुछ किया, उससे किसको लाभ हुआ और यहां वालों की क्या दशा हुई, इस पर 'हिन्दुस्तान में द्ररिद्र होने के कारण' नाम के लेख में भारतेन्दु ने 9 मार्च, 1874 की कविवचन सुधा में लिखा था, 'सरकारी पक्ष का कहना है कि हिन्दुस्तान में पहले सब लोग लड़ते भिड़ते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था, यह सब सरकार की कृपा से हुआ। हिन्दुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी न रहा। रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है। रेलवे कंपनी वाले जो द्रव्य व्यय किया है इसका ब्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग है। कुल मिलाकर 26 करोड़ रूपया बाहर जाता है'।[9] भारतेन्दु सहित अन्य हिन्दी भाषी लेखकों ने तत्कालीन भारत की वास्तविकता को अपने लेखन के माध्यम से व्यक्त किया। अगर देखा जाए तो हिंदी साहित्य उस प्रतिरोध

का प्रतीक था जो अंग्रेजों के विरूद्ध धीरे–धीरे आमजन में व्याप्त हुआ था। भारत में हिन्दू मुस्लिम वर्ग के स्वार्थ जिस प्रकार एक दूसरे से टकरा रहे थे उससे समस्याएं और बढ़नी ही थी और इसका फायदा अंग्रेज उठा रहे थे। रेलवे का निर्माण अंग्रेजों ने व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए किया और इसका पूर्ण लाभ उन्हें मिला लेकिन कोई भी व्यवस्था या प्रणाली का सिर्फ एक आयाम ही नहीं होता बल्कि दूसरे अन्य लाभ भी होते है। समयान्तर में रेलवे से यह बात सिद्ध होती है।

हरिद्वार की यात्रा पर लिखते हुए भारतेन्दु ने रूड़की में जो मशीनें देखी थी, उनका जिक्र उन्होंने बड़े चाव से किया है। यह हम देख चुके है कि हिन्द प्रदेश में शिल्पविद्या का कालेज खोलने की उन्हें बहुत इच्छा थी, जो पैसा न होने से पूरी न हो पाई। हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान में उन्होंने विज्ञान और कौशल की शिक्षा पर जोर दिया है। रेल कैसे चलती है, फोटो कैसे खींची जाती है, हम गुलाम क्यों हो गए, अंग्रेजी राज्य क्यों है, इन सब प्रश्नों पर विचार करने के लिए भारतेन्दु ने जनता से अपील की। उन्होंने बताया कि मशीनों के इस्तेमाल से यहाँ के लोग छले जातें हैं, धन बाहर जाता है और हम परदेशी जुलाहों के गुलाम बन गए हैं, यहाँ का कच्चा माल विलायत जाता है और वहाँ से तैयार माल लाकर यहाँ बेचा जाता है, यहाँ पर उद्योग और मशीनों के बारे में पुस्तकें नहीं है।[10] वह यह मान रहे थे कि यदि भारत में तकनीकी ि"ाक्षा दी जाए तो उद्योगों का विकास होगा तथा यहाँ पर भी लोग विज्ञान के बारे में जान सकेंगें।

हिंदी साहित्य के दूसरे युगपुरूष महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी अपनी आलोचनात्मक लेखन शैली में रेलवे का विश्लेषण किया। यह स्वयं रेलवे में काम करते थे। वह लिखते है, 'एक साल अजमेर में 15/– महीने पर नौकरी करके, पिता के पास बम्बई पहुंचा और तार का काम सीख कर जी. आई. पी. रेलवे में 50/– महीने पर तार बाबू बना। तार बाबू होकर भी टिकट बाबू, माल बाबू, स्टेशन मास्टर यहां तक कि रेल की पटरियां बिछाने और उसकी सड़क की निगरानी करने वाले प्लेटलेयर (परमानेंट वे इंसपेक्टर) तक का भी काम मैंने सीख लिया। फल अच्छा ही हुआ। अफसरों की नजर मुझ पर पड़ी। जब इण्डियन मिडलैंड रेलवे बनी और उसके दफ्तर झांसी में खुले तब जी. आई. पी. रेलवे के मुलाजिम जो साहब वहां के जनरल ट्रैफिक मैनेजर मुकर्रर हुए वे मुझे भी अपने साथ झांसी ले गये और नये–नये काम मुझसे लेकर मेरी पदोन्नति करते गए।[11] द्विवेदी जी का मन इस नौकरी में नही लग रहा था और वो लेखन कार्य कर रहे थे। इसी समय उनका परिचय प्रयाग की इंडियन प्रेस से हुआ और कुछ समय बाद वो प्रेस की 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन कार्य भी देखने लगे। उन्होंने न सिर्फ सरस्वती को हिंदी जगत की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका की श्रेणी में ला दिया बल्कि इसमें शामिल होने वाले विषयों ने हिंदी भाषा–साहित्य को कई ख्यातिप्राप्त लेखक भी दिए।

सरस्वती के संपादक की भूमिका में उन्होंने ऐसे विषयों को शामिल किया जो देश की स्थिति से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित होते थे। देश की सम्पत्ति जिसे अंग्रेज व्यापार के रूप में अपने साथ लेकर जा रहे थे, उसे लोगों तक पहुँचाने के लिए सम्पत्ति शास्त्र संबंधी कई लेख सरस्वती में प्रकाशित किये। जब इस विषय पर लेखों की एक श्रृंखला प्रकाशित हो गई तो द्विवेदी जी ने इसे एक पुस्तक का रूप देने की कोशिश की। तत्कालीन समय में सम्पत्ति शास्त्र विषय पर किसी हिन्दी के लेखक द्वारा लिखी गई पहली पुस्तक बन गई। सरस्वती में भारतीय किसान और अवध के किसान को लेकर जो लेख प्रकाशित किए उनमें किसानों की हाय–हाय के कारण गिनाये गए है। फौज रखने का खर्च, रेल बनाने का खर्च तक किसानों से टैक्स बढ़ाकर वसूल किया जाता था। 'सम्पत्ति शास्त्र' में आचार्य द्विवेदी ने लिखा कि भारत एक पराधीन देश है यहाँ के प्रधान सूत्रधार अंग्रेज इंग्लैंड में रहते हैं। अंग्रेज जो भारत से धन लेता है या कर लेता है उसे अंग्रेजी में 'होम चार्जेज' कहते है। अंग्रेज भारतीय राजा–महाराजाओं से

कर्ज लेते थे और धन कमाते थे उनके पास व्यापार का हुनर था। उसी हुनर से अंग्रेजों ने भारत में नए ढंग का सामंतवाद कायम किया।[12] इसके कारण ही यहाँ पर अंग्रेजों का शासन दृढ़ हुआ। द्विवेदी जी ने अपनी आलोचनात्मक दृष्टि से भारतीय सम्पदा के आर्थिक दोहन का विश्लेषण किया। हालांकि उनका यह भी मानना था कि व्यापार से आधुनिकता, सभ्यता तथा शिक्षा का भी ज्ञान होता है। जैसे–जैसे मनुष्य सभ्य और शिक्षित होता जाता है तैसे ही तैसे उसकी जरूरतें बढ़ती जाती है। अतएव व्यापार की वृद्धि होती जाती है। आज तक हिंदुस्तान को भाप से चलने वाले यंत्रों की जरूरत न थी। पर अब यह जरूरत प्रतिदिन बढ़ती जाती है। रेल, बड़े–बड़े पुतलीघर और छापेखाने, जो जारी है बिना यंत्रों के नहीं चल सकते। ऐसे यंत्र बनाने के लिए लोहा, कोयला और शिल्पज्ञान चाहिए।[13] इसलिए व्यापार तथा शिक्षा का आदान–प्रदान जरूरी है। दरअसल तत्कालीन समय भारत के लिए एक संक्रमणकालीन समय था क्योंकि विश्व में आधुनिकता, वैज्ञानिकता तथा उद्योगीकरण ने दस्तक दे दी थी लेकिन अंग्रेजों की नीतियां भारत में इनके विपरीत थी फिर भी देर सवेर यहाँ पर बदलाव की बयार शुरू हो रही थी।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अंग्रेजों के द्वारा रेलवे के विकास पर किए जा रहे अत्यधिक व्यय की बजाय शिक्षा पर खर्च करने की बात कही। उनका मानना था कि ि"ाक्षा से मनुष्य में बुद्धिमत्ता बढ़ती है जिससे वह स्वयं तथा देश के विकास में पूर्ण सहयोग कर सकता है। उनके द्वारा लिखा गया लेख 'रेलों का खर्च और शिक्षा प्रचार' में वो कहते हैं फौजी खर्च के लिए तो यह कहा जा सकता है कि देश की रक्षा करने और देश में सर्वत्र अमन चैन बना रखने के लिए फौज रखने की बड़ी जरूरत है। बिना काफी फौज रक्खे अराजकता और विद्रोह का डर रहता है। कमजोर देख कर बाहरी शत्रु भी देश पर चढाई कर सकता है। अतएव फौजी खर्च में कसर न करनी चाहिए। बहुत खूब। ठीक। हम इस दलील को जरा देर के लिए मान लेते है। अच्छा तो रेलों का खर्च क्यों बढ़ाना चाहिए। रेलें कम होने से देश पर कौन बड़ी भारी आफत आ सकती है। जिस शिक्षा की बदौलत मनुष्य में मनुष्यत्व आता है, जिस शिक्षा की बदौलत देश की धन सम्पत्ति बढ़ सकती है, जिस शिक्षा की बदौलत मनुष्य भूखों मरने से बच सकता है, क्या रेलें बनाना उस शिक्षा से अधिक जरूरी काम है? बहुत दिन की बात नहीं। बात 1907 ईसवी की है। उस साल सरकार ने सिर्फ 13.50 करोड़ रूपया रेलों के लिए अलग कर दिया था। पर उसके तेरह ही वर्ष बाद अर्थात् 1920–21 के चिट्ठे में उसने इस काम के लिए 31.50 करोड़ रूपया खर्च कर डालने का निश्चय कर लिया है। इस इतने थोड़े समय में रेलों का खर्च कोई ढाई गुना बढ़ गया है। अर्थात् जब से कोई 18 करोड़ रूपया सरकार अधिक खर्च करने के लिए तैयार है। इस समय जितने बच्चे निरक्षर है उन सबको पढ़ाने के लिए 19 ही करोड़ रूपये दरकार है। सरकार यदि ये 18 करोड़ रूपये रेलों में खर्च न करके शिक्षा में खर्च करती तो भारत से निरक्षरता भाग जाती। पर रूपये की थैली ठहरी सरकार के हाथ में। हम लोग तो सिर्फ कह–सुन सकते है, रो धो सकते है, मिन्नत–आरजू कर सकते है, थैली का मुंह तो खोल सकते नहीं। एक बात और भी है। रेलें बनाने में जो रूपया लगाया जाता है उसका सूद भी काफी नहीं मिलता। इधर रेलें की लैनों के दाहने बायें जो बड़े–बड़े गड्ढे हो जाते है उनमें बरसाती पानी भर जाने से वह सड़ा करता है और मौसमी बुखार आदि पैदा करने का कारण होता है। रेलें बनाने से जहाँ आवागमन और माल की खागनी आदि में सुभीता होता है वहां उससे हानियां भी होती हैं। पर इन बातों पर दृक्पात न करके किसी कारण विशेष से, सरकार रेलों का जाल बिछाती ही चली जा रही है। रेलें खूब बनें 96 फीसदी बच्चे मूर्ख रह जाएं तो हर्ज नहीं। मार्डन–रिव्यू की इन दलीलों का क्या जबाव सरकार रखती है, यह सुनने को मिल जाता तो शायद संशयालुओं का संशय कुछ न कुछ दूर हो जाता।[14] द्विवेदी जी के द्वारा जून 1920 में लिखा गया यह लेख वास्तविकता में तत्कालीन समय की हकीकत बयां करता है।

सरकार सिर्फ अपने फायदे के लिए रेलों का निर्माण कर रही थी बल्कि जरूरतें अन्य क्षेत्रों में भी थी। वह सरकार की आलोचना करते हुए देश की यथास्थिति का वर्णन कर रहे थे।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य को अनगिनत मौलिक तथा श्रेष्ठ रचनाएं दीं। इसके साथ ही उन्होंने इतिहास, राजनीति, धर्म, समाज, प्रशासन, शिक्षा, भाषा एवं तत्कालीन सभी विषयों पर प्रमुखता से लेखन कार्य किया। अंग्रेजों की विभिन्न नीतियों तथा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के संघर्ष पर भी उन्होंने विस्तृत रूप से लेखनी की। अंग्रेजों के द्वारा बिछाई जा रही रेलवे लाइन और उसकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अन्य क्षेत्रों तथा विषयों पर भी सरकार को कार्य करने की वकालत की। सरस्वती में 1916 में प्रकाशित श्री शिवप्रसाद गुप्त का "वाणिज्य व्यवसाय सम्बन्धी सुधार" लेख में वह तत्कालीन निजी रेलवे कंपनियों के स्वामित्व के कारण भारतीय व्यापारियों की हानि पर प्रकाश डालतें हैं। वह लिखतें हैं, भारत की रेल कम्पनियों ने माल ले जाने के लिए किराये का जो नियम बनाया है उससे विदेशी वणिकों को तो लाभ होता है और भारतीय वणिकों को हानि। इसलिए भारत सरकार रेल कम्पनियों का प्रबन्ध कम्पनियों के हाथ से निकालकर स्वयं अपने हाथ में ले ले, जिससे रेल द्वारा भविष्य में देशी वणिकों और व्यवसायियों को हानि न पहुँचे।[15] रेलवे से व्यापार का विकास जरूर हो रहा था लेकिन उसका लाभ भारतीयों को नहीं मिल रहा था। इसकी प्रतिक्रिया हिंदी साहित्य के विद्वानों के लेखन में देखने को मिलती है।

पं. गंगा प्रसाद अग्निहोत्री का 1924 में सरस्वती से प्रकाशित "भारत का वाणिज्य और वाणिक समाज" लेख में उन्होंने स्थानीय वणिक समाज की उदासीनता पर टिप्पणी करते हुए भारतीय किसानों तथा वणिक समाज के अंतः संबंधों पर प्रकाश डाला। वह लिखतें हैं, ईस्ट इंडिया कम्पनी वाणिज्य के उद्देश्य से भारत में आई थी। उसके यहाँ के कर्मचारियों ने जब इंग्लैंड में अपने मालिकों को लिखा कि भारत में एक स्थान से दूसरे स्थान को सुगमता से वाणिज्य–सामग्री पहुँचाने के लिए मार्ग नहीं है तब उन लोगों ने शीघ्र ही, कम्पनी बनाकर करोड़ों रूपया एकत्र कर उसे मार्ग बनाने के लिए भारत भेज दिया। उसी रूपये से भारत में प्रथम बम्बई से कल्यान तक रेल बनाई गई। एक वणिक समाज वह भी था और है। एक भारत का वणिक समाज है जो कहता है, हमसे और किसानों से क्या सम्बन्ध है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के लोगों को क्या जरूरत पड़ी थी कि वे सात समुद्र और तेरह नदियों के पार भारत में रेल बनाने के लिए रूपया भेजते।[16] दरअसल अग्निहोत्री जी का मानना था कि यहाँ के किसानों के लिए वणिक वर्ग के द्वारा ध्यान न दिए जाने के कारण ही व्यापार, वाणिज्य का ह्रास हो रहा है और देश की स्थिति ठीक नही है। जबकि दूसरे देश के लोग अपने व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए भारत में रेलवे लाइन बिछा रहें हैं।

श्री लक्ष्मीकान्त झा का लेख "रात का सफर" सरस्वती से 1932 में प्रकाशित हुआ। इस लेख में वह व्यगांत्मक शैली का प्रयोग करते हुए तत्कालीन भारतीय समाज का चित्रण किया है। एक आम आदमी को अकेले ट्रेन में सफर के दौरान रोजमर्रा की किन–किन चीजों से सामना करना पड़ता है। इस विषय पर यह मनोरंजन भरा लेख है। वह लिखते हैं, डिब्बे भर में मैं ही जाग रहा था। सोने के लिए काफी जगह होते हुए भी मैं जाग रहा था। न जाने क्यों ? जरा कभी झपकी–सी आती भी तो स्टेशन पहुँचते ही फिर चौकना हो उठता। चोरों के डर से नहीं। मेरे पास सामान नहीं के बराबर था। पर फिर भी।[17] दरअसल तत्कालीन समय में लोग विज्ञान से जुड़ी प्रत्येक चीज के अभ्यस्त नहीं थे और भीड़–भाड़ होने के कारण अपनी सुरक्षा के लिए चौकन्ने रहते थे। कुछ तो बातों ही बातों में रात का सफर गुजर देते थे और कुछ तो सिर्फ सोने के लिए ही आते थे। प्रत्येक का अपना–अपना स्वभाव होता है।

श्रीयुक्त उग्र का "पेशावर–एक्सप्रेस" यात्रा वृत्तान्त 1942 में सरस्वती से प्रकाशित हुआ। इसमें वह अपने सहयोगियों के साथ 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का प्रचार करने के लिए उज्जैन से ग्वालियर जा रहे थे। अपनी यात्रा की महत्ता, साथियों का परिचय तथा

बोगी में बैठे सह यात्रियों का पारिवेशिक परिचय देतें हैं। इसके साथ ही भोपाल, बीना में पड़ने वाली सर्दी और थर्ड क्लास डिब्बे की व्यथा का वर्णन भी करतें हैं। वह देशकाल की राजनीति पर बात करते हुए महात्मा गाँधी और रेलवे का अंतः संबंध बतलातें हैं। वह लिखतें हैं, वकील हिरवे श्री जमुनालाल जी बजाज और महात्मा गाँधी के बहुत निकट बरसों रह चुके हैं, उन्होंने भी एक इंच भी सरके बिना पड़े राय दी कि– ''महात्मा जी तो थर्ड क्लास में अपने साथियों को हर्गिज सोने नहीं देते, कहते हैं कि सोने का भाड़ा थर्ड क्लास में नहीं दिया जाता, महज बैठने की जगह घेरनी चाहिए।[18] तत्कालीन समय में अधिकतर भारतीय थर्ड क्लास में ही यात्रा करते थे यदि सर्दी हो तो भीड़ पता ही नही चलती कितने ही लोग एक बोगी में आ जाते। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान महात्मा गाँधी और रेलवे का ऐसा रिश्ता बना जिसे आमजन भी अपने में समाहित कर लिया था।

भारत में रेलवे की स्थापना से लेकर स्वाधीनता प्राप्त तक, इससे जुड़े हुए विविध प्रसंग तथा आयाम रहें हैं। रेलवे सामाजिक जीवन में व्याप्त होकर यातायात के एक साधन के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान के लोगों को जोड़ रही थी। पश्चिमी शिक्षा से प्रेरित एक नया वर्ग जिसने भारतीय सामाजिक संरचना में व्याप्त अंधविश्वास, रूढ़िवाद तथा आडम्बरों एवं कुप्रथाओं के लिए आन्दोलन चलाएं, अपने कार्यों, लेखन तथा विभिन्न स्थानों की यात्राओं से लोगों को जागरूक किया। इसी पृष्ठभूमि में हिन्दी भाषा प्रदेश के प्रबुद्ध जनों ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रश्न उठाए। लोग जाने अनजाने में ही सही रेलवे यात्राओं के दौरान लेखन कार्य भी किया जिससे यात्रा वृत्तान्त विधा का और विकास हुआ। यहाँ पर हिन्दी साहित्य से जुड़े कुछ लेखों में रेलवे को खोजने की कोशिश की गई है जिसके पीछे सिर्फ यह देखना है कि हिन्दी भाषा प्रदेश में जिस साहित्य का विकास तत्कालीन समय में हो रहा था, वह वर्ग रेलवे को किस दृष्टिकोण से देख रहा था। हिंदी साहित्य में दखल रखने वाले कई लेखकों ने अपने मतानुसार रेलवे पर अपनी बात रखी, इसके साथ ही वे रेलवे से सहमत तथा असहमत भी थे। किसी भी प्रणाली या व्यवस्था का तब तक सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता जब तक इसमें आलोचना व विश्लेषण का पुट न हो।

निष्कर्ष– यात्रा वृत्तान्त, संस्मरण, कहानी या लेख वास्तविकता में औपनिवेशिक भारत की वह तस्वीर दिखाता है जो प्रायः अभिलेखागारों में नहीं मिलती। साहित्य भी उसी प्रक्रिया का हिस्सा रहा जिसे उदारवादी, क्रांतिकारी, कांग्रेस तथा गांधी ने भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के प्रतिरोध में किया। एक साधारण व्यक्ति जिसने उपनिवेशी व्यवस्था में शिक्षा पाकर तत्कालीन समाज का आकलन करके अपने मनोवेगों को शब्दों की शक्ल दी, उसने रेलवे को कभी रोमांच, मनोरंजन तथा पीड़ा के रूप में भी महसूस किया। इसी की वानगी में साहित्य में रेलवे को उल्लेखित किया गया। औपनिवेशिक भारत में राजनीतिक जागरण की जो बयार संचार माध्यमों के कारण गतिशील हुई, उसमें साहित्य ने अपना वैज्ञानिक सहयोग देकर बौद्धिक क्रांति को आगे बढ़ाया। यहाँ पर बौद्धिक क्रांति का आशय तत्कालीन समय में विकसित उस साहित्य से था जिसमें रेलवे का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जिक्र हो रहा था। इस साहित्य में यात्रा वृत्तान्त, संस्मरण तथा रेलवे संबंधी लेखों व कहानियों का उल्लेख करने की कोशिश की गई है। वास्तविकता में विज्ञान व प्रौद्योगिकी से जुड़ा कोई भी उपकरण, प्रणाली हमारे मन मस्तिष्क पर भी प्रभाव डालता है और हम उसका मनन करतें हैं। औपनिवेशिक भारत में स्थापित रेलवे प्रणाली भले ही व्यापारिक स्वार्थों की पूर्ति करने के लिए लाई गई लेकिन यातायात के साधन ने मनोरम दृश्यों के माध्यम से सजीव गीत, कहानियों की रचना की प्रेरणा दी वहीं दूसरी ओर इस पर आलोचनात्मक प्रतिक्रिया लोगों ने व्यक्त की। साहित्य में बनती बिगड़ती इसकी छवि ने यात्रा वृत्तान्त को नए प्रतिमान दिए जिससे भाषा भी मजबूत हुई। औपनिवेशिक भारत में रेलवे से की जाने वाली यात्राओं में हिन्दी भाषी लेखकों ने कई महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए। वो एक ओर राज की सरकार की शोषण भरी नीतियां, विपरीत व्यापार व्यवस्था, रेलवे कर्मचारियों का वर्ताव, देरी से

ट्रेनों का पहुँचना, रेलवे में व्याप्त गंदगी तथा आम भारतीयों की सामाजिक दशा का उल्लेख किया। वहीं दूसरी ओर आधुनिकता, विज्ञान, तकनीक, आभियांत्रिकी, लोकतंत्र, राजनीति तथा शासन प्रणाली में देश दुनियां में हो रहे बदलावों पर भी नजर डाली। दरअसल यह हिंदी पट्टी की बौद्धिक क्रांति की बयार थी जो तत्कालीन समय में देखने को मिल रही थी। एक ओर हिंदी भाषा साहित्य में रेलवे ने अपनी जगह बना ली थी जिससे हिंदी का विकास तीव्र हुआ और यह भाषा परिष्कृत भी हुई। इसके साथ ही हिन्दी साहित्य में यात्रा वृत्तान्त के माध्यम से एक नई विद्या का जन्म हुआ जिसके कारण आम लोगों ने भी साहित्य से रेलवे को देखा।

संदर्भ–

1. तलवार, वीर भारत, सं. हिंदी नवजागरण के अग्रदूत राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द प्रतिनिधि संकलन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या–भूमिका–तेरह.
2. तिवारी, डॉ. रामचन्द्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1992, पृष्ठ संख्या–295.
3. प्रसाद, कमला, सं. हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रतिनिधि संकलन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ संख्या–भूमिका–सोलह.
4. वही, पृष्ठ संख्या–134.
5. वही.
6. वही, पृष्ठ संख्या–135.
7. वही, पृष्ठ संख्या–102–103.
8. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1966, पृष्ठ संख्या–25.
9. वही, पृष्ठ संख्या–32.
10. वही, पृष्ठ संख्या–36.
11. रामबक्ष, सं. हिंदी नवजागरण के अग्रदूत महावीर प्रसाद द्विवेदी प्रतिनिधि संकलन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या–3.
12. द्विवेदी, आचार्य महावीर प्रसाद, सम्पत्ति शास्त्र, संकलन तथा भूमिका कृष्णदत्त पालीवाल, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ संख्या–संपादकीय भूमिका सतरह.
13. वही, पृष्ठ संख्या–231.
14. रामबक्ष, पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या–138.
15. सरस्वती हीरक जयंती अंक, सरस्वती हीरक जयंती समारोह समिति, राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली, 1961, पृष्ठ संख्या–556.
16. वही, पृष्ठ संख्या–613.
17. वही, पृष्ठ संख्या–271.
18. वही, पृष्ठ संख्या–364.